डॉक्टर-मरीज़ सम्बंध

डॉ. नरेश पुरोहित

एक चिकित्सक की सबसे पहली ज़िम्मेदारी क्या हो? इस सम्बंध में आज से लगभग 2500 साल पहले यूनानी चिकित्सक प्रीमियम नान नोकरे की शपथ ध्यान देने योग्य है। उन्होंने कहा था "सबसे ज़रूरी यह कि जानबूझकर नुकसान नहीं पहुंचाना।"

चिकित्सक और मरीज़ का सम्बंध आपसी विश्वास पर आधारित होता है। इसलिए एक मरीज़ सामान्यतया तब तक उसी चिकित्सक से परामर्श लेता रहता है जब तक कि परिस्थितियां और अनुभव उसे अन्यत्र जाने को बाध्य न कर दें। मरीज़ का अपने चिकित्सक पर निशंक भरोसा रखना ठीक होने की राह में पहला व अहम कदम है।

चिकित्सकों के खिलाफ समुचित इलाज न करने, उपेक्षा और लापरवाही बरतने की शिकायत हमेशा से रही है। परन्तु उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 से मरीज़ों (सशुल्क इलाज का उपभोक्ता) में आशा का संचार हुआ है। चिकित्सा व्यवसाय के कुछ सदस्यों के तीव्र विरोध या अनमने समर्थन के बावजूद यह अधिनियम मरीज़ या उसके परिवार के लिए न्याय पाने का अंतिम अस्त्र बना हुआ है। अभी तक इस अधिनियम के तहत बालिग मरीज़ ही अपने मसले उठा सकते थे। लेकिन इलाज सम्बंधित किसी नाबालिग मरीज़ के माता-पिता को भी मुआवज़े का हकदार बताने सम्बंधी सर्वोच्च न्यायालय का ताज़ा फैसला बेहतर उपभोक्ता न्याय की दिशा में एक कदम है।

विकसित देशों जैसे अमरीका में चिकित्सा लापरवाही के मुकदमे काफी आम हैं। इसलिए चिकित्सक, सर्जन जैसे चिकित्सा व्यवसाय से जुड़े लोग अभियोग प्रकरण से खुद को बचाने के लिए बीमा कराते हैं। इन प्रकरणों में हज़ारों डॉलर खप सकते हैं और व्यक्ति बर्बाद हो सकता है। यह सच है कि इससे चिकित्सा सुविधा महंगी हुई है लेकिन कानूनी अभियोग से बचने के लिए चिकित्सकों ने अधिक सावधानी की ज़रूरत महसूस की है। ये अभियोग चिकित्सा की प्रतिष्ठा को तो हानि पहुंचाते ही हैं। साथ ही बार-बार अभियोग लगने से बढ़ने वाली प्रीमियम राशि के कारण शुल्क देकर इलाज प्राप्त करने वाले उपभोक्ता पर भारी आर्थिक बोझ भी पड़ता है।

अमरीका में मरीज़ या उसके परिवारजनों से बातचीत करते समय चिकित्सा व्यवसायी मरीज़ को लेकर उसके पास उपलब्ध तमाम विकल्प सामने रख देते हैं। इलाज सम्बंधी इन तमाम विकल्पों में चुनाव की ज़िम्मेदारी मरीज़ पर छोड़ दी जाती हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि चिकित्सक या अन्य चिकित्सा व्यवसायी ऐसी किसी भी बात को जो बाद में एक दुखद आश्चर्य के रूप में सामने आ सकती है, मरीज़ या उसके परिवार से छिपाने की कोशिश नहीं करते। मरीज़ और उसके परिवारजनों के सभी सवालों का जवाब गम्भीरता से दिया जाता है।

भारत में चिकित्सा व्यवसाय से जुड़े अधिकांश चिकित्सक काफी व्यस्त नज़र आते हैं। उनके पास मरीज़ को सरल भाषा में मर्ज़ बताने का समय नहीं होता। और शायद ही मरीज़ या उसके परिवार को वैकल्पिक चिकित्सा की जानकारी दी जाती है।

अक्सर मरीज़ की स्थिति को अति गम्भीर बताते हुए उस पर तुरन्त उपचारी कर्मकाण्ड होने लगते हैं। ऐसी गम्भीर विशेषज्ञ चेतावनियों

के बाद मरीज़ के परिवार के पास किसी दूसरे चिकित्सक से जांच कराने के लिए बहुत कम समय होता है। न केवल गम्भीर केसों को इस तरह निपटाया जाता है बल्कि रोज़मर्रा के मामलों में भी वैकल्पिक चिकित्सा के बारे में कोई उपयुक्त चर्चा नहीं की जाती।

दूसरी प्रवृत्ति इलाज के बारे में बिल्कुल निश्चित कर देने की रहती है, ''चिंता न करें, मरीज़ ठीक हो जाएगा और दस दिनों में घर जा सकेगा।'' जब ऐसा सम्भव नहीं होता तो चिकित्सक दूसरी कहानी गढ़ देता है - ''अब मैंने जाना कि क्या गलत हुआ था, मैं दवाएं बदल दूंगा।'' ऐसी बातों से मरीज़ और उसके परिवार को खुशी तो होती है परन्तु अस्पताल में ठहरने का हर दिन खर्चीला होता है। चिकित्सा बीमा के बदले मिलने वाला मुआवज़ा अगर मिलता भी है तो बहुत देर से आता है।

मरीज़ या गिनी पिग्स

भारत में सर्जरी और दवाओं की नई विधियां बड़ी उम्मीदों के साथ प्रस्तुत की जाती हैं। लेकिन हम अक्सर भूल जाते हैं कि जो चीज़ें दूसरे देशों में बेहतर काम करती हैं वे वैसा ही काम हमारे देश में नहीं कर पाती हैं।

कुछ साल पहले तक स्तन का आकार बढ़ाने के लिए स्तन प्रत्यारोपण किया जाता था। बाद में यह पाया गया कि इस प्रत्यारोपण से कैन्सर की सम्भावना बढ़ जाती है। इसलिए इसे तुरन्त हटाना ज़रूरी हो गया। इसके निर्माताओं ने दुनिया के कई अखबार और पत्रिकाओं में प्रत्यारोपण करवाने

वालों को सूचित कर विज्ञापन दिया कि वे इन्हें हटवा लें। इसी तरह महिला गर्भ निरोधकों में प्रत्यारोपण और क्वीनाक्रीन (Q) उपचार जैसी नई तकनीकों को घातक पाया गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने भी Q विधि को प्रतिबंधित कर दिया है। परन्तु किसी भी चिकित्सक ने इन उपायों को अपनाने जा रही महिलाओं को भविष्य की संभावित दिक्कतों से आगाह नहीं किया। महिला या उसके शुभेच्छुओं द्वारा ज़ाहिर की गई किसी भी चिंता को नज़रअंदाज़ कर दिया गया। कुछ मामलों में तो भारतीय पुरुषों और महिलाओं को वास्तव में परीक्षण किए जाने वाले जानवरों की तरह इस्तेमाल किया गया।

कुछ आधुनिक विधियों (मसलन अल्ट्रासाउण्ड मशीन) का अंधाधुंध उपयोग चिंताजनक है। अल्ट्रासाउण्ड की खोज के पहले भी लाखों करोड़ों बच्चे पैदा हुए हैं। परन्तु अब लगभग 200-250 रुपए की लागत वाले अल्ट्रासाउण्ड स्कैन के लिए नियमित रूप से कहना आम बात है। जबकि बढ़ते भ्रूण पर अल्ट्रासाउण्ड तरंगों के लगातार उपयोग के परिणाम का अध्ययन नहीं किया जा रहा है जो कि ज़रूरी है।

अन्य उदाहरण एंजियोग्राम और एंजियोप्लास्टी का है। इनकी कम से कम लागत भी लगभग साठ हज़ार रुपए आती है। क्या ऐसी महंगी तकनीक ज़रूरी हैं? जबकि ऐसे मामलों में इलाज के घरेलू और परम्परागत तरीके जैसे दवाई, भोजन और व्यायाम का समुचित समन्वय हृदय रोगियों के लिए पर्याप्त सहायक होता है।

यह सच है कि बीमारी को दूर भगाने और दर्द व यातना से निजात दिलाने वाला यह उत्तम व्यवसाय अब व्यावसायिक हो चला है। लेकिन चिकित्सा व्यवसाय की इस गलाकाट स्पर्धा में चिकित्सक को मरीज़ और उसके परिवार के हितों को रुपए के तराजू में आंकी गई सफलता की वेदी पर कुर्बान नहीं करना चाहिए। ज़रूरी है कि चिकित्सक अपने मरीज़ व उसके परिवार के प्रति ज़्यादा पारदर्शी बने। यह ज़िम्मेदारी चिकित्सकों की है कि वह चिकित्सक-मरीज़ सम्बंध के लिए ज़रूरी विश्वास को पैदा करे। चिकित्सा सुविधा की गुणवत्ता में सुधार लाना और आचार संहिता को मजबूत बनाना होगा ताकि इस व्यवसाय पर लोगों का भरोसा और बढ़े। *(स्रोत फीचर्स)*